हरिभूमि रविवार भारती

साक्षात्कार

चेतना के उपनिवेशीकरण से मुक्त होना जरूरी है

प्रो. माधव हाड़ा

मध्यकाल की प्रतिनिधि स्त्री कवि मीरा का जीवन और कविता साहित्यकारों और विमर्शवादियों के लिए उत्सुकता का विषय रहा है। प्रो. माधव हाड़ा विगत एक दशक से मीरा के जीवन-कविता पर गंभीर शोध करते रहे हैं। अभी प्रकाशित हुई उनकी पुस्तक 'पचरंग चोला पहन सखी री' चर्चित हुई है। इस पुस्तक के बहाने मीरा से जुड़े सवालों को लेकर पल्लव ने उनसे बातचीत की। प्रस्तुत हैं प्रमुख अंश।

मीरा जैसी मध्यकालीन कवयित्री पर शोध का विचार कैसे और क्यों आया?

हमारी परंपरा और विरासत की पहचान उपनिवेशकाल में बनी। विडंबना यह है कि साम्राज्यवादी स्वार्थ के अधीन बनी यह पहचान अभी तक जारी है। हम अपने इतिहास में इसी का पिष्टपेषण कर रहे हैं। मीरा पढ़ते हुए लगा कि यह अलग है। उनमें वह सब नहीं है, जो हम खोजना चाहते हैं और जो उनमें है, वो हम खोज नहीं रहे हैं। बस मैंने केवल जो उनमें है उसी पर अपने को एकाग्र किया। 'पचरंग चोला पहन सखी री' उसी का नतीजा है।

मीरा की कई छवियां बन गई हैं। ऐसा क्यों हुआ?

यह सही है। मीरा की कई छवियां चलन में हैं। यह इसलिए हुआ कि हमने अपने-अपने नजरिए को सही ठहराने के लिए अपनी-अपनी मीरा, गढ़ डाली। इन नजरियों के अपने नाप-जोख और सांचे-खांचे हैं। इनकी जरूरतों के हिसाब से मीरा के जीवन से संबंधित जानकारियों में से या तो केवल कुछ चुनकर शेष दरकिनार कर दी गई हैं या कुछ नई गढ़ ली गई हैं। मीरा की कविता इतनी विविध, समावेशी और लचीली है कि उनको उसमें जैसा वे चाहते थे सब मिल गया। उन्होंने जब उनको सगुण कहना चाहा तो उनको उसमें सगुण के लक्षण मिल गए और जब वे शास्त्र के तयशुदा नाप-जोख लेकर माधुर्य खोजने निकले तो उनको उसमें माधुर्य के लक्षण मिल गए। यही नहीं, निर्गुण खोजने वालों को भी मीरा ने निराश नहीं किया। लेकिन किसी ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया कि मीरा की भक्ति और कविता ली और दी गई नहीं, कमाई गई है। यह लोक के बीच, उसकी उठापटक और उजास में अर्जित की गई है इसीलिए यह किसी परंपरा, संप्रदाय और शास्त्र के सांचे-खांचे में नहीं है।

आपने-अपने शोध में दावा किया है कि मीरा संत-भक्त नहीं थीं, जबकि हिंदी समाज उन्हें संत-भक्त ही मानता है?

मीरा पारंपरिक अर्थ में संत-भक्त नहीं थी। वह एक संसारी स्त्री थी और उनके जागतिक सरोकार बहुत व्यापक, मूर्त और सघन थे। संसार विरत संत-भक्तों से अलग उनकी कविता में इसीलिए मूर्त का आग्रह बहुत है। वैयक्तिक पहचान का आग्रह और सांसारिक संबंधों का द्वंद्व और तनाव भी संत-भक्तों की कविता में प्राय: नहीं मिलता, लेकिन मीरा की कविता में यह ध्यानाकर्षक ढंग से मौजूद है। मीरा की कविता में व्यवस्था का विरोध और उससे असंतोष भी चरम पर है।

आपके विचार से मीरा की वास्तविक छवि कैसी होनी चाहिए?

मीरा एक आत्मसचेत और स्वावलंबी स्त्री थी। वह एक सामंत की विधवा थी, उनकी हैसियत एक जागीरदार की थी और उनके पास आर्थिक स्वावलंबन के साधन थे। वह संपन्न थी और इतनी संपन्न थी कि साधु-संतों को आतिथ्य सत्कार में मुहरें देती थी। वल्लभ संप्रदाय के प्रामाणिक माने जाने वाले वार्ता ग्रंथों में इसके साक्ष्य हैं। उनके पितृपक्ष के एक वंशज और इतिहासकार गोपालसिंह मेड़तिया के अनुसार, यह कहना गलत है कि मीराबाई हाथ में वीणा लेकर जगह-जगह साध्वी की तरह घूमती थी। उनको कुछ हद तक जीवन की भी स्वतंत्रता थी। उनकी तत्कालीन सत्ता संघर्ष में निर्णायक भूमिका रही। विडंबना यह है कि अपनी तयशुदा धारणाओं के प्रतिकूल होने के कारण इन तथ्यों पर विमर्शकारों ने कभी ध्यान नहीं दिया।

पर मीरा को लेकर किया आपका शोध, मार्क्सवादी आलोचकों की मान्यताओं के विपरीत जाता है?

शोध सांचों-खांचों को ध्यान में रखकर नहीं होता। यह किसी के समर्थन या विरोध के लिए भी नहीं होता। आपकी दृष्टि वस्तुपरक और तटस्थ होनी चाहिए। हमारे कुछ जड़ मार्क्सवादियों की मुश्किल यह है कि वे कमोबेश उसी तरह से सोचते हैं जिस तरह से उपनिवेशवादी सोचते थे। पहले यूरोपीय उपनिवेशवादी और बाद में जड़ वामपंथी सोच ने हमारे बुद्धिजीवी वर्ग के मन में कई अंतर्बाधाएं खड़ी कर रखी हैं। विडंबना यह है अभी तक हम न तो चेतना के उपनिवेशीकरण से मुक्त हो पा रहे हैं और न जड़ वामपंथी अंतर्बाधाओं से उबर पा रहे हैं। इन अंतर्बाधाओं के चलते अपनी परंपरा और विरासत की ठीक पहचान नहीं हो पा रही है। हमारा समाज अलग तरह का है। यहां सांस्कृतिक वैविध्य और गतिशीलता बहुत है। सार्वदेशिक और सार्वकालिक सांचों खांचों में इसकी पहचान हो ही नहीं सकती है। ○